क्या धर्म में हिंसा दोषावह है ?

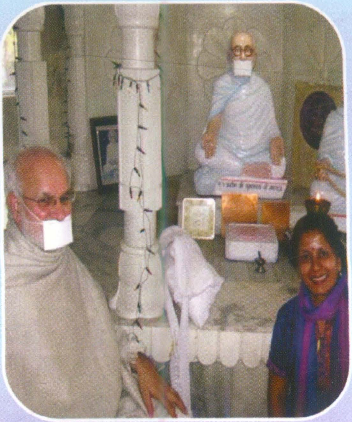

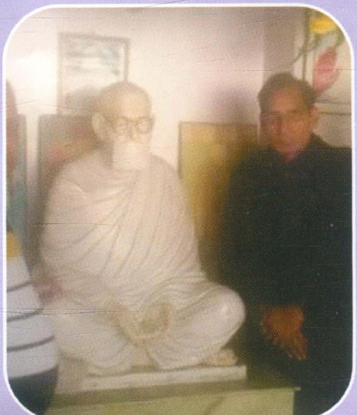

क्या धर्म में हिंसा दोषावह है ?

स्थानकवासी सन्तों आदि की करणी एवं कथनी में अन्तर क्यों और कैसा?

(नोट : स्थानकवासी सन्त चाहे आ. श्री हस्तीमलजी हो या आ. श्री नानालालजी हो अथवा आ. श्री देवेन्द्रमुनि जी हो या आ. श्री समरथमल जी हो, चाहे कोई भी हो, जहाँ जिन मन्दिर, जिन प्रतिमा-मूर्ति की बात आती है, असत्य ही लिखते हैं। वे सत्य तथ्य इतिहास को भी पलट देते हैं और आगम-वचन को भी उलटा-सीधा कहते हैं।

सगर चक्रवर्ती के 60 हजार पुत्रों की तीर्थ रक्षा में मौत, लब्धि-निधान श्री गौतम स्वामी का अष्टापद गिरि पर जाना, अभयकुमार का आर्द्रकुमार को जिन-मूर्ति की भेंट भिजवाना, श्री शय्यंभवसूरिजी का दृष्टांत, सम्प्रतिराजा की जिन शासन प्रभावना, उदायन राजा का चंडप्रद्योत के साथ जिनमूर्ति के लिए युद्ध होना, इत्यादि-इत्यादि अनेक सुप्रसिद्ध बातों को स्थानकवासी सन्त आदि असत्य ही लिखते हैं।

असत्यभाषी सम्यग्दृष्टि नहीं होता, मिथ्यादृष्टि होता है, ऐसा शास्त्र वचन है। ब्यावर (जिला अजमेर, राज.) से प्रकाशित होने वाला स्थानकवासी मासिक पत्र 'सम्यग्दर्शन' के सम्पादक श्री नेमिचन्दजी बांठिया ने जिन-मंदिर एवं जिनमूर्ति के विषय में बहुत कुछ असत्य बातें लिखी हैं। 5 अक्टूबर, 1995 से

5 मार्च 1996 के कुल 6 अंक में उन्होंने मूर्तिपूजा, मूर्ति एवं जिन-मंदिर के विषय में अनेक ऊटपटांग एवं परस्पर विरोध की बातें लिखी हैं, जिसका उत्तर इस लेख में दिया है, जो अत्यन्त मननीय है।

मूर्ति-पूजा का सबसे बड़ा समर्थन तो आज स्थानकवासी सन्त अपने समाधि-मन्दिर, गुरु-मूर्तियों की प्रतिष्ठा, पगल्या (चरण) स्मृति-मन्दिर आदि बनाकर कर ही रहे हैं। फिर परम उपकारी तीर्थंकर भगवान के मन्दिर और मूर्ति का ही विरोध वे क्यों करते हैं?

सभी सत्यप्रिय और आत्महितचिन्तक व्यक्ति को जिन-मूर्ति का विरोध छोड़कर, इनकी उपासना में लग जाना चाहिए।)

ब्यावर से प्रकाशित होती 'सम्यग्दर्शन' पत्रिका के सम्पादक श्री नेमिचन्दजी बांठिया (B.A., L.L-B.) ने 'सम्यग्दर्शन' (5 अक्टूबर, 1995 से 5 मार्च, 1996 तक के कुल 6 अंकों) में जिन-मूर्ति, जिन-मन्दिर और मूर्ति-समर्थकों के प्रति जहर उगला है। बांठिया जी ने चैत्यवासियों का बहाना लेकर मूर्ति-समर्थक प्राचीन महान जैनाचार्यों को धूर्त, मठाधीश, शिथिलाचारी कहे हैं, यह अत्यन्त निन्दनीय हैं।

इस लेख में हमने 'सम्यग्दर्शन' पत्रिका में (कुल 6 अंकों में) छपा सम्पादक श्री नेमिचन्दजी बांठिया का लेख **'स्थानकवासी नहीं, मूर्ति-पूजक धोखा खा रहे हैं'** का सप्रमाण, सत्य-तथ्यपूर्ण उत्तर दिया है। यद्यपि इन 6 अंकों को पढ़ने से ही पता चल जाता है कि सम्पादकश्री भले ही वकालत पढ़े हों, जैनागम एवं निर्ग्रन्थ प्रवचन के विषय में वे अ ब क इ भी नहीं जानते हैं। सम्पादकश्री ने सम्यग्दर्शन में परस्पर विरुद्ध,

अनेक हास्यास्पद एवं असत्यपूर्ण बातें लिखी हैं। इन बेमेल बातों का कुछ दिग्दर्शन यहां प्रस्तुत है।

यद्यपि अत्यधिक आनन्द की बात यह है कि आज अधिकांश हमारे प्यारे स्थानकवासी बन्धुगण, श्रावक-श्राविकायें, जिन-मन्दिर, जिनमूर्ति एवं मूर्ति-पूजा का समर्थन कर जिन-पूजा, तीर्थयात्रा, जिनेश्वरों की कल्याणक भूमियों की पावन स्पर्शता करना इत्यादि आत्म-कल्याणकारी आगमिक धार्मिक प्रवृत्तियों द्वारा अपना जन्म सफल कर रहे हैं।

हमारे प्यारे इन स्थानकवासी भाइयों को इतना स्पष्ट ध्यान में आ ही गया है कि जब स्थानकवासी सन्त स्वयं भी आवश्यक एवं उपयोगी समझकर अपने गुरुओं के समाधि-मन्दिर, पगल्या, छत्री, चबूतरा आदि स्मारक बनवाने लग गये हैं, फिर जिन-मन्दिर, जिन-मूर्ति-पूजा, तीर्थंकरों की कल्याणक भूमि की स्पर्शना तथा तीर्थयात्रा के आत्म-कल्याणकारी मार्ग से दूर रहने का हमें क्यों सिखा रहे हैं?

और हमारे प्यारे पापभीरू, सम्यग्दृष्टि, सत्यप्रिय स्थानकवासी बन्धुओं को यह ज्ञान भी भली-भांति हो चुका है कि शंकर, गणपति, हनुमान, सांईबाबा, भवानी माँ, सन्तोषी माँ आदि को मानने-पूजने से तो वीतराग तीर्थंकर अरिहन्त को मानना-पूजना और तीर्थ यात्रा करना यह सर्वोच्च आत्मोन्नति का मार्ग है।

रही बात कतिपय उन्मार्गगामी, असत्यवादी, पाप से नहीं डरने वाले स्थानकवासी सन्त और श्रावकों की, कि जो जानने-समझने पर भी स्वयं असत्य के मार्ग पर चलते हैं और भोलेजनों को असत्य मार्ग पर चला रहे हैं।

सम्पादकश्री का पंथ ममत्व देखिये

स्थानकवासी सन्त के उन्मार्ग के विषय में श्री नेमिचन्द जी बांठिया लिखते हैं कि + + + + यदि स्थानकवासी पन्थ के सन्त वेष को

धारण करने वाले, अपने गुरुओं के समाधि स्थान, चरण-पादुका अथवा मूर्ति आदि जो बनवाते हैं, तो वे स्थानकवासी के वेष में बहुरूपिये हैं। वे वेष से भले ही अपने आपको स्थानकवासी कहने का ढोंग रचे, किन्तु उनकी प्रवृत्तियाँ स्थानकवासी मान्यता परम्परा एवं वीतराग प्रभु की आज्ञा के विरुद्ध होने से वे स्थानकवासी पन्थ के भेष में होते हुए भी ढोंगी, मायाचारी, महाव्रतों के भंजक, प्रभु आज्ञा के विराधक, चतुर्विध संघ के समक्ष ली गई प्रतिज्ञा को खण्डन करने वाले, छह काय के भक्षक, वीतराग प्रभु के शासन की ही तुलना करने वाले और जिन-शासन के भेष को लज्जित करने वाले है। अतएव भेष से स्थानकवासी होते हुए भी कर्म से (व्यवहार से) वे सम्यग्दृष्टि भी नहीं कहे जा सकते। + + + + (पृ. 149)

+ + + + जो भी स्थानकवासी के भेष में आरम्भकारी-पापकारी प्रवृत्तियाँ करते हैं, करवाते हैं अथवा करने वालों का अनुमोदन मात्र भी करते हैं, वे स्थानकवासी हैं ही नहीं।

(पृ. 149) + + + +

+ + + + स्थानकवासियों के कतिपय वेषधारियों द्वारा अपने गुरुओं के समाधि-स्थल, मूर्ति आदि निर्माण के जो कार्य किये और करवाये जा रहे हैं, वे एकान्त साधु मर्यादा एवं वीतराग प्रभु की आज्ञा के विरुद्ध होने से निन्दनीय हैं।

+ + + + (पृ. 149)

+ + + यदि स्थानकवासी परम्परा के चतुर्विध संघ का कोई भी घटक आरम्भ-समारम्भ एवं हिंसायुक्त कार्य करके उसमें आत्म-कल्याण एवं धर्म की प्ररूपणा करता है, करवाता है और उसकी अनुमोदना भी करता है, तो वह निन्दनीय है।

+ + + (पृ. 14) 'सम्यग्दर्शन पत्रिका' (दि. 5-1-96)

समीक्षा : बांठिया जी के उपरोक्त उक्त विधानों से यह निश्चय हो ही जाता है कि आज स्थानकवासी

पन्थ में कोई भी सच्चा सन्त नहीं है, सभी ढोंगी और मिथ्या-दृष्टि ही हैं। क्योंकि आगम-दिवाकर आ. श्री चौथमलजी म. ने अपने साधुओं के ग्रुप फोटो छपवाकर बांटे थे, आचार्य श्री मिश्रीमलजी म.सा. का समाधि मन्दिर जैतारण (जि. पाली) में बना है। आ. श्री गणेशमलजी की 6 फुट की मूर्ति एवं मन्दिर औरंगाबाद में बना है। आ. श्री आनन्द ऋषिजी का स्मारक अहमदनगर में बना है। आ. श्री हस्तीमलजी म. का स्मारक निमाज (तह.-जैतारण, जि. पाली) में बन रहा है, जहां 'अस्थिकुम्भ' की स्थापना का विवाद कोर्ट तक पहुंचा है। मेरठ, आगरा, दिल्ली, राजगिरि वीरातन आदि में भी समाधि मन्दिर बने हैं। यानी आज पूरा-पूरा स्थानकवासी मार्ग मूर्ति-पूजा को दिल से चाहने लगा है। क्योंकि अब आगमदिवाकर कहे जाने वाले स्थानकवासी संत भी फोटो-मूर्ति छपवाने लगे हैं, फिर औरों का तो मूर्ति-समर्थन के विषय में क्या कहना?

जहाँ तक आरम्भ-समारम्भ का सम्बन्ध है, उक्त लिखने वाले सम्पादक श्री नेमिचन्द बांठिया भी स्थानकवासी नहीं रहे। वे अपने स्वयं के लिखे हुए शब्दों से ही ढोंगी एवं मायाचारी सिद्ध हुए हैं। क्योंकि वे खुद 'सम्यग्दर्शन' पत्रिका छापने का आरम्भ-समारम्भ और हिंसा धर्म के नाम पर करते ही हैं।

करनी-कथनी में आकाश-पाताल का अन्तर

बांठिया जी लिखते हैं कि ...... यदि स्थानकवासी परम्परा के चतुर्विध संघ का कोई भी घटक आरम्भ-समारम्भ एवं हिंसा युक्त कार्य करके उसमें आत्म-कल्याण एवं धर्म की प्ररूपणा करता

है, करवाता है और उसकी अनुमोदना भी करता है, तो वह निन्दनीय है। .... ('सम्यग्दर्शन' पृ. 14, 15-1-96)

श्री घीसूलालजी पीतलिया ('सम्यग्दर्शन' 5 मार्च, 96) लिखते हैं कि '.... धार्मिक प्रयोजनों के लिए हिंसा करना यह दुर्लभ बोधि का कारण है, धर्म के लिए हिंसा करने वाले सम्यकत्व प्राप्ति से दूर चला जाता है। ....'

श्री नेमिचन्दजी बांठिया सम्पादकीय में लिखते हैं कि .... जहां जीव-हिंसा है वहाँ तीन काल में धर्म एवं आत्म-कल्याण हुआ नहीं, होता नहीं और होगा नहीं, चाहे वह भगवान के नाम पर और अनन्तान्त भक्ति के साथ ही क्यों न की जाय ? .....

(पृ. 11 दि. 5-1-96) ....

.... क्या हिंसा में महा-अहिंसा और आरम्भ-समारम्भ में आत्म-कल्याण मानने वाले सत्यवादी और प्रभु महावीर के उपासक हो सकते हैं? कदापि नहीं। ..... 5.761, दि. 5-11-95

समीक्षा : सम्पादक श्री और प्रायः सभी स्थानक वासी सन्त यही कहते हैं कि आरम्भ-समारम्भ में और जहाँ जीवों की हिंसा होती है, वह कार्य हेय है, पाप है, धर्म है, और इसमें जिज्ञासा नहीं है।

फिर प्रश्न यह होता है कि ऐसा लिखने-बोलने वाले :.

(1) स्थानकवासी सन्त अपनी फोटो क्यों खिंचवाते हैं? इनमें भी अग्निकाय, अपकाय आदि जीवों की हिंसा होती है।

(2) स्थानकवासी सन्त स्थानक बनवाने की प्रेरणा-उपदेश क्यों देते हैं? उन्हें तो ऐसा उपदेश देना चाहिए कि 'स्थानक बनवाना पाप है, क्योंकि इसमें स्थावर और त्रसकाय जीवों की बड़ी हिंसा होती है, इसलिए स्थानक बनवाना अधर्म है और इसमें धन खर्च करने वाला पापी होता है और दुर्गति में जाने वाला है, इत्यादि।'

किन्तु ये तो स्थानक बनवाने वालों का मान-सम्मान करते हैं, क्यों?

(3) स्थानकवासी सन्तों की दीक्षा, जन्म-जयन्तियाँ, चद्दर-महोत्सव आदि में साधर्मिक वात्सल्य, संघ-भोजन, मेहमानों के लिए चौका-रसोड़ा आदि का भी निषेध करना चाहिए। क्योंकि चौका चलाने में भी त्रसकाय एवं स्थावरकाय जीवों की अपार विराधना-हिंसा होती है?

हिंसक-आरम्भ-समारम्भ युक्त पाप कर्मों को क्यों करवाते हो?

जिनमन्दिर निर्माण, जिन-मूर्ति-पूजा तथा तीर्थ यात्रा में हिंसा तथा आरम्भ, समारम्भ मान कर इन पवित्र क्रियाओं का निषेध-विरोध करने वाले स्थानकवासी सन्त आदि का सम्मेलन बुलवाना, बारिश में व्याख्यान रखना, किताब छपवाना, बस द्वारा भक्तों को दर्शनार्थ बुलवाना, चद्दर महोत्सव करवाना, दीक्षार्थी का जुलूस निकालना आदि कार्यों का भी निषेध-विरोध करना चाहिए। उन्हें ऐसा उपदेश देना चाहिए कि 'वे सभी कार्यों में हिंसा है, इसमें आरम्भ समारम्भ का पाप होता है और जहां पाप होता है वहां धर्म नहीं होता, यह दुर्गति का रास्ता है। ये सब पापों को छोड़कर तप-संयम और सँवर की साधना में लग जाना चाहिए।'

स्थानकवासी सन्तों को पापकारी, हिंसायुक्त-साधार्मिक वात्सल्य, संघ-भोजन, चौका चलाना, स्थानक बनवाना, स्मारक-निर्माण करवाना, पुस्तक छपवाना इत्यादि कार्यों का उपदेश नहीं देना चाहिए। किन्तु हिंसामय होते हुए भी इन कार्यों का वे उपदेश देते ही हैं, फिर तो उनको शादी करने का, व्यापार करने का, हिल स्टेशन घूमने जाने का भी उपदेश देना चाहिए क्योंकि ये भी पाप कार्य हैं और पाप कार्य का उपदेश तो वे देते ही हैं।

क्या कारण है कि आश्रव, हेय, आरम्भ-समारम्भ युक्त, हिंसामय पाप कार्य मानते हुए भी स्थानकवासी सन्त उपाश्रय

स्थानक-निर्माण, पुस्तक छपाई, गुरु मंदिर-निर्माण, साधर्मिक भोजन इत्यादि कार्यों का उपदेश देते हैं, इसी प्रकार वे शादी करने का, व्यापार करने का, हिल स्टेशन घूमने का इत्यादि उपदेश क्यों नहीं देते हैं? क्योंकि स्थानक मत से तो इन दोनों कार्यों में हिंसा, अधर्म समान रूप से है।

हमारे मत में तो स्थानकवासी सन्तों को एकमात्र जिन-मन्दिर, जिन-मूर्ति और जिन-पूजा से ही वैर-विरोध है? इसलिए उनको इस पवित्र धर्म में भी हिंसा, आरम्भ-समारम्भ दिखाई देता है, जब कि स्थानक बनवाना, गुरु-मन्दिर-निर्माण करवाना, शास्त्र छपाई करवाना, सम्मेलन बुलवाना, संघ-भोजन करवाना, गाय को घास खिलाना, कबूतर को चुग्गा डालना इत्यादि प्रवृत्तियों में हिंसा, आरम्भ-समारम्भ होते हुए भी इन कार्यों में उन्हें हिंसा, आरम्भ-समारम्भ-जीव-विराधना नहीं दिखाई देती है।

'सम्यग्दर्शन' पत्रिका में तीर्थंकर की फोटो क्यों नहीं?

स्थानकवासी सन्त स्वयं की फोटो छपवाते बँटवाते हैं। अपनी किताब में 24 लांछनों, 14 स्वप्नों, अष्ट-मंगल आदि के चित्र छपवाते हैं। फिर तीर्थंकर के फोटो-चित्र का ही विरोध क्यों?

'सम्यग्दर्शन' पत्रिका (पृ. 8, दि. 12-5-96) पर श्री रतनलालजी डोसी की प्रतिकृति छपी है। दानदाता की या स्वर्गस्थ किसी व्यक्ति की फोटो उसमें छपनी हैं। यदि कोई पत्रिका को 200)-500) रु. देता है, तो उनकी रंगीन तस्वीर-प्रतिकृति भी वे सम्पादक श्री छाप सकते हैं। फिर तीर्थंकर परमात्माओं की तस्वीर-फोटो से ही इन्कार क्यों?

फिर सम्पादक श्री (पृ. 7, दि. 5-12-95) लिखते हैं कि ... 'सम्यग्दर्शन' पत्रिका का सम्पादन करते समय आगम आज्ञा को पूर्णतया ध्यान में रखा जाता है। ...... हम तो जिससे सहमत हैं, उन्हें ही 'सम्यग्दर्शन' में स्थान देते हैं। ..... (पृ. 8)।

समीक्षा : बांठिया जी गृहस्थ की फोटो से सहमत हैं, इसलिए सम्यग्दर्शन पत्र में उसे स्थान देते हैं, किन्तु तीर्थंकर की फोटो वे नहीं छापते है। तो क्या आगम आज्ञा ऐसी है कि 'तीर्थंकर की तस्वीर छापना आरम्भ-समारम्भ तथा पाप है, जबकि सांसारिक गृहस्थ की फोटो छापना यह धर्म है, इसमें हिंसा नहीं होती है?'

यह कितना अज्ञान है कि तीर्थंकर भगवान की मूर्ति-फोटो-तस्वीर का ही विरोध किया जाता है। यदि श्री नेमिचन्दजी को सत्य के प्रति थोड़ा-सा भी प्रेम है, तो फिर उन्हें अपने पत्र में तीर्थंकर की फोटो छापना प्रारम्भ कर देना चाहिए, वरना सभी प्रकार के फोटो छापना बन्द कर देना चाहिए।

जड़-मृत शरीर के पीछे बसों को लेकर क्यों जाना?

पृ. 11, दि. 5-1-96 पर वे लिखते हैं कि '..... भगवान महावीर प्रभु का धर्म गुण-पूजक है, गुण रहित जड़-पूजा धर्म है ही नहीं। ....'

समीक्षा : जब भी कोई स्थानकवासी सन्त या सती जी स्वर्गवासी होते हैं, तो हजारों भक्त बस आदि वाहन द्वारा हिंसा कर वहाँ जाते हैं। अहमदनगर में आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म. का स्वर्गवास हो गया तब हजारों लोग वहाँ बस, कार आदि द्वारा हिंसा करते हुए पहुंच गये। आचार्य श्री के मृत-जड़ शरीर में अब न तो ज्ञान है, न दर्शन न चारित्र। फिर जड़ शरीर के दर्शन के लिए क्यों जाना चाहिए था? क्या बस-कार आदि से जाने में हिंसा रूप अधर्म नहीं हुआ? फिर क्यों गये?

और तो और, हजारों लोग वहाँ हिंसा करते हुए बस, कार आदि से गये उसकी अनुमोदना-प्रशंसा स्थानकवासी सन्तों ने अखबारों में छपवा कर की। जबकि बस द्वारा आरम्भ-समारम्भ कर जाने की तो स्थानकवासी सन्तों को निन्दा-भर्त्सना करनी चाहिए थी। स्थानकवासी सन्तों को उस वक्त यह कहना चाहिए कि आप हिंसा, विराधना, आरम्भ-समारम्भ कर क्यों यहाँ आये? बस-कार आदि से आना पाप है, अधर्म है। आपको आपके गांव-शहर में बैठकर ही सामायिक-सँवर करना चाहिए, इसमें ही धर्म है। फिर कभी इस प्रकार का पाप नहीं करना चाहिए, और जो पाप हो गया है उसका आपको प्रायश्चित कर लेना चाहिए। इत्यादि।

स्थानकवासी सन्तों द्वारा ध्वज-वन्दन

कुछ वर्ष पूर्व स्थानकवासी आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म. की निश्रा में पूना (महाराष्ट्र) में एक विशाल सम्मेलन आयोजित किया था। करीब 300-400 सन्त-साध्वियों व 1 लाख जितने श्रावक-श्राविकाएँ वहां इकट्ठे हुए थे। कई दिनों तक सम्मेलन चला था।

इतने सारे लोगों के खाने-पीने आदि में बहुत आरम्भ-समारम्भ तथा हिंसा हुई थी। आने वाले भक्तों ने धर्म के नाम पर रात्रि-भोजन तथा अभक्ष्य मिठाइयाँ बहुत प्रेम से खायी थीं।

इतनी सारी हिंसा-अधर्म होने पर भी एक भी स्थानकवासी सन्त या सती ने इस पाप कार्य का विरोध नहीं किया था, किन्तु उपदेश देकर इन्होंने खर्च के लिए लाखों रुपये इकट्ठे करवाये थे। क्या रुपये देने वालों ने रुपये पाप समझकर दिये थे या धर्म समझकर? क्या रुपये इकट्ठा करने के लिए स्थानकवासी सन्तों ने ऐसा उपदेश दिया कि 'सम्मेलन का यह एक महा पापकारी, हिंसा-जन्य, आरम्भ-समारम्भ का सावद्य कार्य है, इसके लिए आप

आपका धन दान करें, जो भी इसमें अधिक धनदान करेगा उसे अधिक पाप होगा और पाप से वह नरक में दुःख पायेगा।' फिर कोई समझदार इसमें धन देता क्या?

पूना के इस सम्मेलन में सभी मूर्ति का विरोध करने वाले सन्तों की उपस्थिति में जड़ रंगीन कपड़े के टुकड़े को आकाश में फहराया था, जिसे 'शासन ध्वज' की संज्ञा दी गयी थी। इसको हवा में फहराने की बोली हुई थी, जिसकी तीन लाख रुपया देकर मद्रास के संघ ने अवसर लिया था। बाद में सभी ने ध्वज-वन्दन किया था तथा ध्वज-भक्ति का गीत भी गाया था। ध्वज-वन्दन करना यह मूर्ति-पूजा आस्था का ही एक प्रकार है।

तीर्थंकर भगवान की मूर्ति-पूजा का विरोध करने वाले कपड़े के जड़ ध्वज को वन्दन करते हैं यह कितना आश्चर्य? क्या ध्वज को हवा में फहराने में वायुकाय की हिंसा नहीं हुई? क्या ऐसी हिंसा में धर्म होता है? रुपये बोलकर ऐसी हिंसा करने वालों को कौन-सा धर्म हुआ? जिस प्रकार आप ध्वज-वन्दन मान्य करते हो, इसी प्रकार आपको मूर्ति-पूजा भी मान्य करनी ही चाहिए।

श्री बांठिया जी ! अब आप ही बताइये-गुण रहित जड़ ध्वज-पूजा में स्थानकवासी सन्तों ने धर्म माना या नहीं? यह भी एक-दो सन्तों ने नहीं, किन्तु 300-400 सन्त-सतियों ने साथ में मिलकर। आप तो लिखते हैं कि '.................. अतएव स्पष्ट है कि मूर्ति-पूजा, जड़-पूजा और आरम्भ-समारम्भ में धर्म एवं आत्मकल्याण मानना जहर को अमृत और घोर अन्धकार को प्रकाशमय बताने जैसा है।'

('सम्यग्दर्शन' पृ. 12, दि. 5-1-96)

समीक्षा : क्या ध्वज-वन्दन जड़-पूजा नहीं है? मृत शरीर को दर्शन-वंदन करना यह जड़ पूजा नहीं है? गुरु

का समाधि-मन्दिर बनाना क्या आरम्भ-समारम्भ का पाप कार्य नहीं है?

क्या सारे-के-सारे स्थानकमार्गी सन्त जहर को अमृत मानने वाले हैं न? अन्धकार को प्रकाशमय बताने वाले हैं न? याद रहे कि ऐसी मूर्ति-पूजा एक दो स्थानकवासी सन्त नहीं। करीब-करीब सभी स्थानकवासी सन्त कोई-न-कोई रूप में करते ही हैं।

इसलिए बांठिया जी के शब्दों में : ...... जो पर-प्राणों को लूटकर प्रभू पूजा करने का कहते हैं, वे वीतराग प्रभु की आज्ञा के विराधक एवं कपूत बेटे के समान बहिष्कार करने योग्य हैं। ('सम्यग्दर्शन' पृ. 760, दि. 5-12-95)

समीक्षा : जड़ रंगीन कपड़े के ध्वज को फहराना क्या जड़-पूजा नहीं है? मृत शरीर को दर्शन-वंदन करने जाना क्या जड़ पूजा नहीं है? समाधि-मंदिर बनवाना क्या जड़-पूजा नहीं है? प्रायः सभी स्थानकवासी सन्त यही करते ही हैं। अब कहिए वे कपूत बेटे हैं कि सपूत? क्या वे बहिष्कार करने योग्य हैं या नहीं?

***

हिंसा अधर्म है-फिर क्यों आप इसे करते हैं?

सम्पादक श्री लिखते हैं कि-(पृ. 11 दि. 5-1-96) '....... जहां जीव हिंसा है वहां तीन काल में भी धर्म एवं आत्मकल्याण हुआ नहीं, होता नहीं और होगा नहीं, चाहे वह भगवान के नाम पर और अनन्तानन्त भक्ति के साथ ही क्यों न की जाये? ......'।

समीक्षा : ऐसा लिखने वाले बांठिया जी को 'सम्यग्दर्शन' की छपाई भी बन्द कर देनी चाहिए, क्योंकि छपाई में बड़ी हिंसा होती ही है। परन्तु इनकी कथनी और करणी में बहुत बड़ा अन्तर है। प्रायः सभी

स्थानकवासी संत आदि हिंसा का विरोध करते हैं, फिर भी वे गाय को घास डालना, कबूतर को चुग्गा डालना, संघ भोजन करवाना, पुस्तक छपवाना, स्थानक बँधवाना, गुरु-मन्दिर करवाना, चद्दर महोत्सव रचवाना इत्यादि आरंभ-समारंभ युक्त हिंसक प्रवृत्तियाँ करते ही हैं। और भी वे अहिंसा धर्म की दुहाई करते रहते हैं।

शास्त्र छपवाना धर्म है या अधर्म?

शास्त्र छपाई में भी त्रस एवं स्थावरकाय जीवों की हिंसा होती ही है। नेमिचन्दजी बांठिया लिखते हैं कि "....... भगवान ने तो ग्रन्थ प्रकाशन के कार्य को सावद्य बताया है और साधक को इसमें प्रवृत्त न होने का उपदेश दिया है। ...."

(सम्यग्दर्शन, पृ. 623, दि. 5-11-95)

समीक्षा : सबसे प्रथम तो बांठिया जी को 'सम्यग्दर्शन' पत्रिका छापना ही बन्द कर देना चाहिए और आचार्य श्री घासीलालजी म. आचार्य श्री चौथमलजी म., आ. श्री हस्तीमलजी म., आ. श्री मधुकरजी म. इत्यादि सभी ने ग्रन्थ प्रकाशन करवाकर सावद्य-पापकारी कार्य किया है, उनका बहिष्कार तथा विरोध करना चाहिए तथा उनके ग्रन्थ-प्रकाशन के कार्य की निन्दा करनी चाहिए।

पर, बांठिया जी लिखते हैं कुछ और करते हैं कुछ और छठे अधिवेशन के प्रस्ताव में बांठिया जी ने प्रस्ताव रखा था कि "........... एक पुस्तक के प्रकाशन में 40% रकम दानवीर दाताओं के पास से मांगी जाये।" ......

(पृ. 648, दि. 5-10-95)

आय-व्यय के हिसाब में पृ. 649 पर लिखा है कि "....... प्रेस खर्च 60 हजार, विद्युत खर्च 10 हजार ......।"

फिर पृ. 648 पर बांठिया जी लिखते हैं : "....... शेष आगमों का प्रकाशन हेतु श्रद्धासम्पन्न योग्य पण्डित रखकर उनका प्रकाशन किया जाय तो शासन सेवा का महत्वपूर्ण कार्य होगा।" ......

समीक्षा : पूर्व में बांठिया जी ग्रन्थ-प्रकाशन के कार्य को सावद्य-हिंसामय कहकर अधर्म बताते हैं, फिर वही अधर्म के लिए 40 प्रतिशत रकम दानवीरों के पास माँगते हैं।

अरे भाई ! ग्रन्थ-प्रकाशन का कार्य सावद्य-हिंसायुक्त है, जिसमें 10 हजार की विद्युत जली है, तो फिर कितने ही त्रस तथा स्थावर जीवों की हिंसा हुई होगी? फिर ऐसे सावद्य-पाप कार्य के लिए कौन दानवीर धर्मात्मा रकम देगा? गांठ के पैसे खर्च कर कौन धर्मात्मा पाप को मोल लेगा? बांठियाजी ! आप भी वकालत ठीक पढ़े हैं।

फिर आगे आगम प्रकाशन के कार्य को सम्पादक श्री ने 'शासन प्रभावना का महत्वपूर्ण कार्य बताया है', यह कैसे? क्या हिंसा का कार्य शासन प्रभावना का महत्वपूर्ण काम हो सकता है? एक ओर तो बांठिया जी लिखते हैं, 'हिंसा में तो तीन काल में धर्म नहीं होता।' फिर लिखते हैं कि 'भगवान ने ग्रन्थ प्रकाशन के कार्य को सावद्य पापमय बताया है।' बाद में लिखते हैं कि 'ग्रन्थ प्रकाशन का कार्य शासन प्रभावना का महत्वपूर्ण काम है।'

हैं न बेमेल बातें ! सच ही तो कहा है कि 'विवेक से भ्रष्ट असत्यवादी व्यक्ति का पतन एक बार नहीं सौ बार होता है।'

पाप कार्य उपादेय नहीं है

जीत की भेरी (पृ. 4-5, दि. 16-11-95) में श्री मनोहरलाल जी जैन (धार, मध्यप्रदेश वाले) लिखते हैं कि "........ समर्पण

पराये जीव का? किसी जीव की हिंसा अधिकार आपको किसने दिया? -

समीक्षा : फिर तो स्थानकवासी संतों और श्रावकों को उपाश्रय निर्माण, गाय को घास डालना, कबूतर को चुग्गा डालना, संघ-भोजन करवाना, समाधि-मन्दिर निर्माण करना नहीं चाहिए। क्योंकि इन सभी कार्यों में पराये त्रस और स्थावर जीवों का समर्पण होता ही है? किसी जीव की हिंसा का अधिकार आपको किसने दिया?

किन्तु आगे आप लिखते हैं कि "........ साधु-सन्तों द्वारा (गुरुजनों के समाधि-मंदिर आदि एवं स्थानक बनाने के लिए) सावद्य (हिंसामय-पाप-युक्त) उपदेश देना कल्पता नहीं है तथा सामान्यतः अधिकांश साधु इस प्रकार के उपदेश से अपने को पृथक रखते हैं, फिर भी कतिपय साधु श्रावकों को अपना सामाजिक दायित्व का बोध करने तथा गौरवमयी स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए निर्माण कार्य की प्रेरणा देने लग गये हैं, फिर भी स्थानकवासी साधु यह साहस नहीं कर सकता है कि यह धर्म है। ...."

समीक्षा : श्री मनोहरलालजी कितनी असत्य बातें लिख रहे हैं। 'अधिकांश साधु स्थानक निर्माण और समाधि-मन्दिर बनाने से अपने को पृथक रखते हैं।' ऐसा उनका लिखना नितांत असत्य है। सत्य यह है प्रायः सभी स्थानकवासी साधु स्थानक तथा गुरु-मन्दिर-निर्माण करने का उपदेश देते ही हैं। इस प्रकार के उपदेश के बिना यह निर्माण कार्य हो ही नहीं सकता।

श्री मनोहरलालजी दूसरी बात यह कहते हैं कि 'स्थानकवासी साधु कदापि यह नहीं कहते हैं कि स्थानक बनाना धर्म है।' इसके ऊपर हमारा प्रश्न है कि तो क्या स्थानकवासी संत ऐसा उपदेश देते हैं कि

'स्थानक बनवाना यह पाप कार्य है, अधर्म है, स्थानक बनाने वाला पापी-हिंसक होता है और नरकादि दुर्गति में भटकता है। इसलिए स्थानक बनाना नहीं चाहिए।'

आगे आप लिखते हैं कि 'गौरवमयी स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए निर्माण कार्य की प्रेरणा स्थानकवासी संत देने लगे हैं।' कितनी भोली बात लिखी है। अरे भाई ! गौरवमयी स्मृति अहिंसा, संयम और तप से सुरक्षित रहेगी या स्मारक से? लगता है कि मनोहरलालजी के विवेक द्वार बन्द हो गये हैं, जिसके कारण मन में जो भी कुछ आया वह लिख दिया है।

स्थानकवासी मान्यता बेबुनियाद है

यह स्थानकमार्गी परम्परा प्रभुवीर के मार्ग से इतनी भटक गयी है कि '..... कोई भी स्थानकवासी सन्त या श्रावक जी चाहे वैसा मनमाना लिखते या करते रहते हैं।'

जैसे सम्पादक श्री नेमिचन्दजी बांठिया लिखते हैं कि ...... (यद्यपि स्थानकवासी सन्त गुरु मन्दिर, पगल्या आदि का निर्माण करवाते है फिर भी) मूर्ति-पूजक बन्धुओं की तरह उन समाधि स्थलों एवं मूर्तियों को (स्थानकवासी सन्त) वन्दनीय, पूजनीय और आत्म-कल्याण के पावन साधन तो कम-से-कम वे नहीं मानते हैं। इतना अन्तर तो इन स्थानकवासी भेषधारियों एवं मूर्ति-पूजक बन्धुओं में है ही। पृ. 149, दि. 5-3-96 ...'

जब कि मनोहरलाल जी जैन कहते हैं कि 'स्थानकवासी सन्त श्रावकों को अपना सामाजिक दायित्व का बोध कराने तथा गौरवमयी स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए निर्माण कार्य की प्रेरणा देने लग गये हैं। (जीत की भेरी पृ. 5, दि. 16-11-95) ....'

जबकि घीसूलालजी पीतलिया, 'जैनागमों की अर्थ गवेषणा' विभाग में (सम्यग्दर्शन पृ 165, दि. 5-9-96) लिखते हैं कि

'......... धार्मिक प्रयोजनों के लिए हिंसा करना यह दुर्लभ बोधि का कारण है। धर्म के लिए हिंसा करने वाला सम्यक्त्व प्राप्ति से दूर चला आता है। ....' धर्म के नाम पर, गुरु के नाम पर या देव के नाम पर अंधाधुंध हिंसा करने का कोई विधान जिन शासन में नहीं है। यहाँ तो अहिंसा, संयम और तप की महिमा है। ....

समीक्षा : पीतलिया जी अंधाधुन्ध हिंसा करने का विरोध करते हैं, यानी सोच-समझकर धर्म के नाते मर्यादित हिंसा भी क्या परमीशन दे रहे हैं?

मूल बात यह है कि जिसमें आत्म-कल्याण नहीं हो ऐसा उपदेश देना साधु को कल्पता ही नहीं है। उनको तो आत्म-कल्याण की साधना-सामायिक, पौमहा, सँवर, शास्त्र स्वाध्याय का ही उपदेश देना चाहिए। फिर भी जो स्थानकवासी संत, स्थानक निर्माण, गुरु मन्दिर निर्माण, शास्त्र छपाई, संघ भोजन आदि हिंसामय कार्यों का उपदेश देते हैं। वे स्थानकवासी संत बांठिया जी के लेख के अनुसार शठ हैं, मायाचारी हैं, भेषधारी हैं, वे सभी मिथ्या दृष्टि हैं, अयोग्य हैं, गुरु कहलाने के योग्य नहीं हैं। (पृ. 2, 149)

सम्यग्दर्शन अविश्वसनीय

सम्यग्दर्शन पत्रिका में बहुत कुछ असत्य एवं परस्पर विरोधी बातें लिखी हैं। हमारे पढ़ने में तो सिर्फ पांच-छः पत्रिका ही आयी हैं, किन्तु इससे ही पता लगता है कि यह पत्रिका भोले लोगों के धन को तथा समय को बर्बाद कर रहा है और अज्ञान तथा मिथ्यात्व का प्रचार कर रही है। 'सम्यग्दर्शन' पत्रिका और उसके सम्पादक नेमिचन्दजी बांठिया दोनों ही असत्यभाषी तथा अविश्वसीय हैं।

कुछ बातें हम पूर्व में बता चुके हैं .... यहां भी 'सम्यग्दर्शन' मासिक के सम्पादक श्री नेमिचन्द जी बांठिया की कुछ अप्रमाणिक, अविश्वसनीय तथा परस्पर विरोध युक्त असंगत बातें देख लेवें, वे लिखते हैं कि - '...... हम तो जिनसे सहमत हैं, उन्हें ही सम्यग्दर्शन में स्थान देते हैं। .....' (पृ. 8, दि. 5-12-95)

फिर पृ. 7 पर लिखते हैं कि - ' ....सम्यग्दर्शन' पत्रिका का सम्पादन करते समय 'आगम आज्ञा' को पूर्णतया ध्यान में रखा जाता है। ...."

फिर 80 वर्ष के वृद्ध सज्जन की मृत्यु पर लिखा कि- '......... आप आपके पीछे भरा-पूरा परिवार छोड़ गये हैं। .....'

(पृ. 66, दि. 5-1-96)

80 वर्ष की वृद्धा श्राविका के स्वर्गवास पर पृ. 137 (5-2-96) पर लिखा कि - '...... आप अपने पीछे सात पुत्रों का भरा-पूरा परिवार छोड़ गयी है।...........'

समीक्षा : 'भरा पूरा परिवार छोड़ जाना' ऐसा लिखना हेय है या उपादेय? क्यों निर्ग्रन्थ प्रवचन प्रकाशन करने वाला 'सम्यग्दर्शन' पत्र भरा पूरा परिवार की अनुमोदना कर रहा है? क्या ऐसा करने की आगम आज्ञा है? क्या हैं न बेमेल बातें?

सम्पादकश्री पृ. 759, (5-11-95) पर लिखते हैं कि '........स्वामी वात्सल्य के जीमण करवाये आदि छहकाय के महा आरम्भ का उपदेश भगवान महावीर का निवृत्ति प्रधान परम पवित्र जैन धर्म दे सकता है? .....

फिर, एक दीक्षार्थी बहिन की दीक्षा के प्रसंग पर लिखा है कि (पृ. 164, 5-3-96)

'.....साधर्मियों के भोजन की व्यवस्था अत्यन्त सादगी पूर्ण ढंग से थी। जिसमें हरी का सम्पूर्ण त्याग रखा गया । ....'

समीक्षा : संघ भोजन या साधर्मियों के भोजन को स्थानकवासी लोग जीव हिंसा-विराधना होने के कारण हेय और पाप समझते हैं। तो फिर हरी सब्जी बनाने न बनाने से क्या फर्क पड़ता है? सादगीपूर्ण ढंग से भी संघ भोजन करवाने पर हिंसा तो होती ही है, और जहाँ हिंसा होती है वहाँ जिनाज्ञा नहीं है, वह धर्म नहीं है? फिर तो अधर्म की 'सम्यगदर्शन' पत्रिका अनुमोदना क्यों करती है? ऐसा लगता है ही 'सम्यग्दर्शन' पत्रिका 'मिथ्यादृष्टि' पत्रिका है? आगम आज्ञा से विपरित लिखने वाली पत्रिका है।

श्री पितलिया जी भी इसे मिथ्यात्व की संज्ञा देते ही हैं, यथा ....धार्मिक प्रयोजनों के लिए हिंसा करना यह दुर्लभ बोधि का कारण है, धर्म के लिए हिंसा करने वाला सम्यग्कत्व प्राप्ति से दूर चला जाता है। ....' (सम्यगृदर्शन पृ. 165, 5-3-96)

खैर, ऐसी तो बहुत सी हिंसामय प्रवृत्तियों को अनुमोदना-प्रशंसा इस आनागमिक 'सम्यगृदर्शन' पत्र में की गयी है। जैसे कि 'दीक्षा के प्रसंग पर जय-जय के नाद पुकारना, दीक्षा के अवसर पर गीत-संगीत को गाना-बजाना, महा भिनिष्क्रमण का जुलूस निकालना, दीक्षा पत्रिका छपवाना इत्यादि । यथा :-

".....दीक्षार्थिनी बहन वेश परिवर्तन कर दीक्षा पण्डाल में जयजयकारों के बीच उपस्थित हुई। पृ. 192 । ...."

क्या जयजयकारों के नाद से वायुकाय जीवों की हिंसा नही हुई? फिर ".............बालोतरा श्री संघ द्वारा दोनों दीक्षार्थी बन्धुओं का माल्यार्पण कर शाल ओढाकर अभिनन्दन-स्वागत भी किया गया। और गीत-संगीत एवं अपने भाव व्यक्त किये गये ॥ पृ. 191॥ ...."

समीक्षा : ये सभी धार्मिक प्रयोजनों के लिए गयी हिंसा है और ऐसी हिंसा की प्रशंसा-अनुमोदना का पाप 'सम्यग्दर्शन' पत्र कर रहा है। यदि ये सभी स्थानकवासी सज्जन 'सम्यग्दर्शन' पत्र ही बन्द कर देवें तो छपाई की हिंसा का और हिंसा की अनुमोदना करने का सभी क्लेशपाप ही टल जायेगा। क्या संपादकश्री 'सम्यग्दर्शन' पत्रिका छापना बन्द कर देंगे? क्या वे लोगों के पैसे बर्बाद करने का कार्य बन्द कर देंगे?

मुखवस्त्रिका निर्णय

मुखवस्त्रिका के विषय में 'सम्यग्दर्शन' में जिज्ञासा और समाधान विभाग में (पृ. 171, दि. 5-3-96) लिखा है कि-

"............... तीर्थंकर भगवान देशना देते हैं उस समय मुखवस्त्रिका नहीं होती, पर उस समय वे पूर्ण यतना रखते हैं, जिससे छहकाय जीवों की विराधना नहीं होती है। ...."

समीक्षा : 'खुले मुंह बोलने पर भी जीव हिंसा नहीं होती है,' यह कैसे? 'भगवान पूर्ण यतना किस प्रकार रखते हैं ? नाक से भी गरम श्वांस निकलती है, इससे भी हिंसा होती है, फिर स्थानकवासी संत नाक पर भी मुंहपत्ती क्यों नहीं बांधते हैं? जिस प्रकार ऑपरेशन के वक्त डॉक्टर अपने मुँह को नाक सहित बाँधते है या जिन पूजा करते वक्त आशातना से बचने के लिए हम मूर्ति-पूजक अपने मुँह को नाक सहित बांधते हैं, उसी प्रकार जीव-हिंसा से बचने के लिए स्थानकवासी संता को अपने मुँह के साथ नाक सहित बांधते हैं, उसी प्रकार जीव-हिंसा से बचने के लिये स्थानकवासी संतों को अपने मुँह के साथ नाक पर भी मुखवस्त्रिका

बाँधनी चाहिए, तो ही नाक से निकलती हुई गरम श्वांस से वायुकायजीवों की हिंसा बन्द हो सकती है। यानी यदि जीवदया की सच्ची भावना स्थानकवासी संतों को है, तो उन्हें मुँहपत्ति मुँह के साथ नाक पर भी बांधनी चाहिए।

एक प्रश्न : मुखवस्त्रिका की धुलाई कर उसे डोरी पर सुखाई जाती है, उस वक्त मुखवस्त्रिका का नाम मुखवस्त्रिका ही होता है? या अन्य कुछ? इस प्रश्न का उत्तर देवें।

दूसरा प्रश्न : एक स्थानकवासी सन्त यदि मुँह पर मुखवस्त्रिका बांधकर जीवन भर जिन-मन्दिर, जिणधर, जिणपडिमा, चैत्यवंदन, चैत्य, थुंभ तीर्थ, तीर्थ यात्रा इत्यादि के विषय में असत्य ही असत्य बोलता रहता है, तो उसका वचन सावद्य होता है या निरवद्य? इस प्रश्न का उत्तर श्री नेमिचन्द जी क्या देंगे? यह लिखें।

लोकाशाह ने उन्मार्ग का प्रचार किया था।

जैन धर्म में प्रतिमा पूजा अनन्तकाल से चल रही है, जिसकी गवाह आगमशास्त्र तथा उदयगिरि-खण्डगिरि की गुफा और गिरनार जी, शत्रुंजय, सम्मेतशिखरजी पर्वत दे रहे हैं। जैन धर्म में मूर्तिपूजा का विरोध मुसलमान सैय्यद की चाल में फँसकर सबसे प्रथम करीब 400-450 वर्ष पूर्व हुए लोकाशाह नामक एक मिथ्यामति जैन श्रावक ने किया था। तब से यह अनागमिक स्थानक मार्ग निकला है जिसने जैन धर्म को अपार नुकसान पहुंचाया है।

लोकाशाह के पूर्व में जिन मन्दिर, मूर्ति पूजा, चैत्यवन्दन का विरोध किसी ने भी नहीं किया है। लोकाशाह से निकला हुआ यह स्थानक पन्थ अनागमिक है।

हमारा यह प्रश्न है कि यदि लोकाशाह के पूर्व में भी स्थानक पन्थ था तो फिर (1) लोकाशाह के गुरु का नाम क्या था ? (2) लोकाशाह के पूर्व में स्थानक पन्थ में कौन-कौन से बड़े आचार्य आदि हुए? (3) उनके नाम क्या-क्या थे? (4) लोकाशाह के गुरु के गुरु का नाम क्या था? (5) उन्होंने कौन से शास्त्र लिखे? (6) उन्होंने कौन-से शासनोन्नतिकारी, शासन प्रभावक कार्य किये थे ?

सत्य यह है कि स्थानकवासी पन्थ अनागमिक है, भक्ष्या-भक्ष्य का विवेक भी नहीं जानता है, उनके सन्त जो चाहे वैसी शास्त्र निरपेक्ष प्रवृत्तियां कर रहे हैं। स्वयं लोकाशाह के विषय में इतिहासविद् सत्यप्रिय स्थानकवासी पण्डित श्री नगीनदास गिरधरलाल शाह अपनी ऐतिहासिक सुप्रसिद्ध किताब 'लोकाशाह और धर्मचर्चा' में लिखते हैं कि

"....... लोकाशाह ने धर्म का उद्धार किया ही नहीं था, सत्य पूछो तो उन्होंने अधर्म का ही प्रतिपादन किया था। पृ. 29। .... लोकाशाह को अर्धमागधी भाषा का ज्ञान नहीं था। पृ. 25 ...... लोकाशाह ने फक्त क्रोध और द्वेष से ही सूत्रों का तथा मूर्ति पूजा का विरोध किया था और स्थानकवासियों ने सूत्रों के गलत-खोटे अर्थ करके मूर्ति पूजा का निषेध किया है। इसलिए इनके कार्यों में धर्म का उद्योत तो है ही नहीं, किन्तु धर्म की हानि ही है। पृ. 29 ..... अधर्म की प्ररूपणा करने वाले और जैन समाज में धर्म विरुद्ध की बातों और धर्म विरुद्ध सिद्धान्तों को फैलाने वाले व्यक्ति (लोकाशाह) को अपने आप्त (मान्य) पुरुष के रुप में मानना, यह जैन धर्मी के लिए मिथ्यात्व को अपनाने जैसा है। पृ. 47।

समीक्षा : स्थानकवासी विद्वान श्री नगीनदास गिरधरलाल शेठ के अनुसार लोकाशाह धर्मप्राण नहीं अपितु धर्मनाशक ही थे। इसलिए स्थानकवासी

सज्जनों को हमारी नम्र विनती है कि यदि वे अपनी आत्मा का कल्याण चाहते हैं वो लोकाशाह कथित उन्मार्ग का त्याग कर दें। और जिन-मन्दिर, जिन-मूर्ति, जिन-पूजा एवं तीर्थ यात्रा के समर्थन करने वाले 1444 ग्रंथों के रचयिता परम सत्यप्रिय आ. श्री हरिभद्रसूरिजी, भक्तामरस्तोत्र के रचयिता आ. श्री मानतुंगसूरिजी, तत्वार्थ सूत्र के रचयिता आ. श्री उमास्वाति म., कल्याण मन्दिर स्तोत्र के रचयिता आ. श्री सिद्धसेनसूरिजी, आगम शास्त्रों को ताड़ पत्रों पर लिखवाने वाले पू. श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण, समर्थज्ञानी नवांगी टीकाकार अभयदेवसूरिजी, आचार्य श्री शिलांगाचार्य, समर्थवादी श्री देवसूरिजी, कलिकाल सर्वज्ञ आ. श्री हेमचन्द्रसूरिजी, अकबर प्रतिबोधक जगद्गुरु पू. आ. हीरसूरिजी इत्यादि धुरन्धर विद्वान, समर्थज्ञानी, परम सत्यवादी, सन्मार्गदर्शक, मूर्ति पूजा समर्थक आचार्यों की शरण में आ जाना चाहिए।

मूर्ति और मूर्ति-पूजा, आगम तथा इतिहास सम्मत है

अरिहन्त तथा भगवान परमात्मा की आकृति यह जिनमूर्ति है। और उनकी वाणी की आकृति यह शास्त्र है, जिनागम है। अज्ञानी जीव के लिए ये दोनों जड़ हैं, ज्ञानी के लिए दोनों समान रूप से उपास्य हैं। जिस प्रकार शास्त्र जड़ होते हुए भी ज्ञानदायक हैं, पर किसको? अज्ञानी व्यक्ति को नहीं, श्रद्धावान ज्ञानी को। ठीक उसी प्रकार जिनमूर्ति जड़ होते हुए भी ज्ञानदायक है, पर किसको? अज्ञानी जीव को नहीं, मिथ्यात्वी को नहीं, अपितु ज्ञानी को, श्रद्धावान को।

स्थानकवासी सन्त कहते हैं कि-शास्त्र से ज्ञान प्राप्त होता है, किन्तु जिनमूर्ति से नहीं। पर उनका ऐसा कहना ठीक नहीं है। अनपढ़-गँवार को तो शास्त्र से भी ज्ञान नहीं मिलेगा, उसे तो शास्त्र के अक्षर काली लकीरें ही दिखाई देंगी। ठीक उसी प्रकार अज्ञानी, द्वेषी, मिथ्यात्वी व्यक्ति को जिनमूर्ति पूजा जड़ ही दिखाई देगी, पर ज्ञानी के लिए-श्रद्धावान के लिए जिनमूर्ति उपास्य-वन्दनीय-पूजनीय ही दिखाई देगी।

याद रहे कि जिनमूर्ति कीमती पत्थर, हीरा-माणिक से बनी है या कीमती धातु सोना-चांदी से बनी है, इसलिए पूजनीय तथा उपासनीय नहीं है। किन्तु यह जिनमूर्ति मूर्तिमान तीर्थंकर का प्रतीक है, इसलिए पूजनीय है-उपास्य है। हम लोग जिनमूर्ति में यह तीर्थंकर हैं, ऐसी भावना रखकर उनकी-सेवा-भक्ति करते हैं और साक्षात तीर्थंकर प्राप्त हुए ऐसा आनन्द प्राप्त करते हैं।

जिनमूर्ति आगम से सिद्ध है

आगम शास्त्रों में अनेक स्थल पर जिनमूर्ति-मूर्तिपूजा तथा तीर्थ यात्रा का वर्णन आया है, यथा-

1. ऋषभदेव भगवान का निर्वाण हुआ उस अष्टापद पर्वत

पर भरत राजा ने भगवान का मन्दिर-स्मारक बनवाया था। इस तीर्थ की यात्रा लब्धि-निधान गौतम स्वामी ने किया था और वहां तप कर रहे 1503 तापसों को खीर से पारणा करवाया था। श्री भगवती सूत्र का यह उल्लेख जिन शासन में सुप्रसिद्ध है।

2. वर्तमान तीर्थंकरों के निर्वाण स्थल पावापुरी, सम्मेतशिखर, चम्पापुरी, गिरनार आदि पर तीर्थंकरों के पावन स्मारक रूप जिन मन्दिर बने हैं, यह आगमिक तथ्य का साक्ष्य इतिहास भी है।

3. श्री स्थानांग सूत्र में 10 प्रकार के सत्यों का निरूपण है, उसमें से एक स्थापना नाम का सत्य है। इस 'स्थापना सत्य' के आधार पर ही आज अधिकांश स्थानकवासी सन्त अपने गुरुजनों के समाधि मन्दिर, पगल्या, मूर्ति आदि निर्माण करवा रहे हैं। फिर तीर्थंकर की मूर्ति और मन्दिर का ही विरोध क्यों? यह भी आगम सिद्ध स्थापना सत्य है।

4. श्री भगवती सूत्र में चारणमुनियों का नन्दीश्वर द्वीप में तीर्थयात्रा करने जाना बताया है। यह पाठ है "तहिं चेइयाइं वंदइ" अर्थात वहां जिनमंदिर और जिनमूर्ति को वन्दन करते हैं। और फिर वापस लौटकर यहां के स्थापना जिन के आगे चैत्यवन्दन करते है। यह पाठ है-"इह चेइयाइं वंदइ।"

इस विषय में सम्पादक श्री नेमिचन्द जी बांठिया असत्यपूर्ण बात लिखते हैं। वे लिखते हैं कि "विद्याधारी मुनि की विचारधारा चंचल होती है और वे नन्दनवन के बगीचा की शोभा देखने सेर सपाटा करने वहां जाते हैं।" ऐसी ही असत्य बात 'रतनलाल डोसी सैलाना वालों' ने पूर्व में लिखी थी।

पर ये दोनों की बात असत्य हैं। एक सामान्य मुनि को भी बगीचा आदि की शोभा देखने जाना निषिद्ध है, अकर्त्तव्य है। ऐसे मुनि संयमी नहीं कहलाते। फिर चारणमुनि जैसे विद्याधर मुनि यदि

ऐसी हेय निषिद्ध प्रवृत्ति करते तो उनकी आकाशगामिनी विद्या ही नाश हो जाती है।

बांठिया जी लिखते हैं-'वे वहां जाकर ज्ञानियों के ज्ञान को वन्दन करते हैं', यह भी असत्य है। क्योंकि ज्ञान अरूपी होता है, ज्ञान का ढेर नन्दीश्वर द्वीप में है नहीं।

बांठिया जी लिखते हैं-'वे वहां जाकर ज्ञानी के वचन को सत्य जानकर ज्ञानी के ज्ञान को वन्दन करते हैं।' यह बात भी असत्य है। क्योंकि यदि इन चारणमुनि के हृदय में ज्ञानियों के ज्ञान के प्रति थोड़ी-सी भी शंका-अश्रद्धा होती यानी वे सम्यग्दर्शन रहित होते, तो उनको आकाशगामिनी लब्धि ही उत्पन्न नहीं होती। भगवान के वचन को असत्य मानने वाला छठा या सातवां गुणठाणा तक पहुंच सकता ही नहीं है। अर्थात यह मानना ही पड़ेगा कि-"लब्धिधर चारणमुनि नन्दीश्वर द्वीप स्थित शाश्वत जिन चैत्यों (जिन-मंदिर व जिनमूर्ति) को प्रणाम करने के लिए ही वहां जाते हैं।"

5. स्थानकवासी के गुरु-वन्दन के सूत्र तिखुतो में 'चेइयं पज्जुवासामि' ऐसा पाठ हैं। यहां चेइयं का अर्थ है चैत्य यानी जिन मन्दिर व जिनमूर्ति। अर्थात हे गुरुदेव ! मैं आपकी जिन मंदिर व जिनमूर्ति की तरह उपासना करता हूं। स्थानकवासी सन्त चेइयं का अर्थ गान करते हैं, यह सर्वथा असत्य है।

जिस प्रकार चैत्यवास का अर्थ चैत्य में रहने वाले यानी जिन-मन्दिर में रहने वाले (मुनि) ऐसा होता है, उसी प्रकार 'चेइयं' का अर्थ चैत्य यानी जिन मंदिर होता है, पर ज्ञान नहीं।

पूरे जैनागम में, कोष या व्याकरण में चैत्य के लिए ज्ञान शब्द नहीं आया है। जैसे ज्ञान के भेद मति ज्ञान, श्रुतज्ञान ऐसा लिखा है किन्तु कहीं पर भी मतिचैत्य, श्रुतचैत्य इत्यादि नहीं लिखा है।

चेइयं, जिणधर, जिणपडिमा, चेइयाणं, चैत्यवन्दन, चैत्य इत्यादि आगमिक सुप्रसिद्ध शब्द जिन मंदिर व जिनमूर्ति के अर्थ में

ही है। स्थानकवासी सन्त 'चेइयं' का सुप्रसिद्ध अर्थ जिन मन्दिर व जिनमूर्ति ऐसा न कर 'ज्ञान' ऐसा करते हैं, यह उनकी प्रत्यक्ष असत्यवादिता है। इसमें तो शब्दकोष, व्युत्पत्ति और व्याकरण भी असम्भव है।

6. श्री ज्ञाताधर्म सूत्र में द्रौपदी द्वारा सविस्तार की गयी जिनपूजा का वर्णन है। वहां शास्त्र वचन है, जिणपडिमाणं अच्चणं करेइ अर्थात जिन प्रतिमा को अर्चन-पूजन करती है।

असत्य भाषी स्थानकवासी सन्त इस विषय में 'जिणपडिमा' का अर्थ जिण यानी कामदेव की मूर्ति ऐसा करते हैं। पर 'जिण' का अर्थ कामदेव की मूर्ति ऐसा करना असत्यपूर्ण हैं, क्योंकि नमुत्थुणं सूत्र में 'नमो जिणाणं' शब्द आता है, जिसका अर्थ है मैं जिन भगवान को नमस्कार करता हूं, ऐसाहोता है। यहां जिन यानी अरिहन्त भगवान ही होता है, न कि जिन यानी कामदेव।

दूसरी बात यह है कि द्रौपदी सम्यग्दृष्टि हैं, वह उससे हलका-नीचा मिथ्यात्वी कामदेव की पूजा क्यों करती? और ऐसा वर्णन सुधर्मागणधर सूत्र में क्यों करते? द्रौपदी यदि कामदेव की पूजा करती है तो यह तो सती द्रौपदी को नीचा दिखाना हुआ। अर्थात मानना ही पड़ेगा कि द्रौपदी ने ज्ञाताधर्म सूत्र कथित जिन मूर्ति की ही पूजा-उपासना की है।

7. सूयगडांग सूत्र में अभयकुमार ने आर्द्रकुमार को 'जिन मूर्ति' भेंट भेजी थी: ऐसा वर्णन आता है। सम्पादक श्री 'धर्मोपगरण' की भेट भिजवाने का असत्य लिखते हैं, पर उनके पास इस विषय में शास्त्र पाठ नहीं है कि अभयकुमार ने धर्मोपकरण भिजवाया था।

8. श्री उपपात सूत्र में अम्बड श्रावक की सम्यग्दर्शन की प्रतिज्ञा में आता है कि ' न कप्पड़ में अज्जप्पभिई अन्न उत्थिय अरिहन्त चेइयाणि वन्दित्तए नमंस्त्तिए' अर्थात मैं (अंबड़ श्रावक)

प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से मैं अन्य धर्मियों के हाथों में चले गये जिन मन्दिर -जिनमूर्ति को वन्दन या नमस्कार नहीं करुँगा। इस वृत्तांत से भी जिन मूर्ति शास्त्र सम्मत सिद्ध होती है।

9. श्री दशवैकालिक सूत्र के रचयिता 14 पूर्वधर श्री शय्यंभवसूरिजी के वृत्तांत में भी जिन-मूर्त्ति की बात आती है।

10. श्री भगवती सूत्र में उदायन राजा का चण्डप्रद्योत के साथ जिन प्रतिमा के कारण युद्ध हुआ था, यह वृत्तांत आता है।

11. रायपसेणी सूत्र में सूर्याभदेव ने शाश्वत् जिनेश्वर जिन प्रतिमा की पूजा की है। वहां 'धूवं दाउण जिणवराणं' कहकर जिन प्रतिमा को साक्षात् जिनेश्वर ही माना है। कहा भी है- 'जिन प्रतिमा जिन सरिखी', सिद्धान्तं भाखी।

मूर्तिपूजा इतिहास से भी सिद्ध है

1. उड़ीसा में स्थित उदयगिरी और खण्डगिरि की गुफाओं में रही जिन मूर्ति और प्राचीन शिला लेख से भी मूर्ति पूजा सिद्ध होती है। यह शिलालेख करीब 2200 वर्ष प्राचीन हैं, इसमें राजा खारबेल ने भगवान आदिनाथ की मूर्ति का नाम 'कलिंग जिन' इस प्रकार लिखा है। (देखिए जैन धर्म का मौलिक इतिहास, खण्ड 3)

2. एलोरा (औरंगाबाद, महाराष्ट्र) की चार गुफाएँ जैन धर्म से सम्बन्धित हैं। जिसमें अर्हिन्त व सिद्ध की प्रतिमा करीब 2100 वर्ष पुरानी है।

3. मोहनजोदड़ो की खुदाई से मिले प्राचीन अवशेष में भगवान ऋषभदेव, भरतमुनि, बाहुबली मुनि, भगवान ऋषभदेव का लंछन वृषभ आदि मूर्तियों से इतिहासविदों का यह कहना है कि पांच हजार वर्ष पूर्व में भी जैन धर्म में मूर्ति की मान्यता थी। (देखिए : यंग लीडर दैनिक हिन्दी, अहमदाबाद की आवृति, दि. 21-3-96)

4. मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त जिनमूर्तियों की चौकी पर उट्टंकित लेखों से श्री नन्दी सूत्र के शास्त्र पाठों की सिद्धि मिलती है। अर्थात नन्दी सूत्र में मुनियों के नाम और गुरु परम्परा आदि का उल्लेख है, इसको सत्य-तथ्य बताने वाले ये जिन मूर्तियों की चौकी पर उट्टंकित लेख हैं। इससे भी मूर्ति-पूजा की सिद्धि होती है।

5. मूर्ति-पूजा के समर्थन में सबसे प्रबल प्रत्यक्ष प्रमाण है- स्थानकवासी सन्त अपने गुरुओं के समाधि मन्दिर, पगल्या, चौतरा, छत्री आदि स्मारक बनवाते हैं, जहां परिक्रमा दी जाती है, जाप-ध्यान किये जाते हैं, कहीं-कहीं धूप भी होता है। यदि मूर्ति व मन्दिर तथ्यहीन और अनागमिक होते, तो फिर जिनका वे विरोध करते हैं उसी का ही निर्माण कर समर्थन क्यों कर रहे हैं?

स्थानकवासी पन्थ को बेबुनियाद, अनागमिक और उन्मार्गगामी जानकर ही स्थानकवासी सत्यप्रिय श्री मेघऋषि जी आदि 30 सन्तों ने सन्मार्गनाशक स्थानकवासी परम्परा को त्यागकर जगद्गुरु पूज्य श्री हीरसूरीश्वरजी म. के पास सच्ची सम्वेगी दीक्षा को स्वीकार किया था। बाद में बूटेरायजी महाराज ने भी असत्यमय स्थानक पन्थ का त्याग किया था। पंजाब के परम सत्यप्रिय श्री आत्मारामजी महाराज ने अपने 17 शिष्यों के साथ मन्दिर मार्गी सम्वेगी दीक्षा को स्वीकार किया था। मारवाड़ के श्री गजवरमुनि ने भी असत्यपूर्ण स्थानक पन्थ का त्याग किया।

स्थानकवासी सन्त-सतियों को एवं पीतलियाजी, बांठियाजी, कटारियाजी, मनमोहनजी आदि को यदि दुर्गति का थोड़ा-सा भी डर-भय है, असत्य का थोड़ा-सा भी डर है, दिल में उत्सूत्र भाषण का खटका है, तो उन्हें तथ्यहीन, असार, अनागमिक, असत्यपूर्ण स्थानक पन्थ का त्याग कर देना चाहिए और अपनी आत्मा को घोर दुर्गति से बचा लेना चाहिए। इसमें ही उनका आत्मकल्याण है।

और उन सभी को यदि सत्य प्यारा है तो-"मैं पूर्व में मूर्ति-पूजा का विरोध कर रहा था, अब मुझे सच्ची समझ आ गयी है, फिर भी मैं मूर्ति-पूजा का समर्थन कैसे कर सकता हूं? मूर्ति का समर्थन करने पर तो मेरी मान हानि होगी।" इस प्रकार का पक्ष-मोह या अहम् बीच में नहीं लाकर असत्यपूर्ण स्थानक मार्ग को हिम्मत से त्यागकर देना चाहिए और अपनी आत्मा को दुर्गति के भयंकर अनर्थ से बचा लेना चाहिए। आखिर तो पक्षमोह छोड़कर आत्म-कल्याण साधना ही सच्चा धर्म है।

इस पूरे लेख को बार-बार पढ़ें। हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि इस लेख को बार-बार पढ़ने वाला कोई भी स्थानकवासी मुमुक्षु सत्य का पक्षधर बनकर जिन-मन्दिर, जिनमूर्ति और मूर्ति-पूजा को स्वीकार करेगा ही। आखिर तो सत्य का ही जय-विजय होता है।

इस लेख में परम-कल्याणकारी, परमश्रद्धेया जिनाज्ञा के विपरीत कुछ भी लिखा गया हो तो उसका तीन करण तथा तीन योग से मिच्छामिदुक्कड़म्।

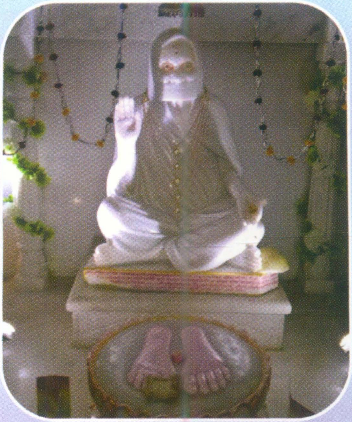

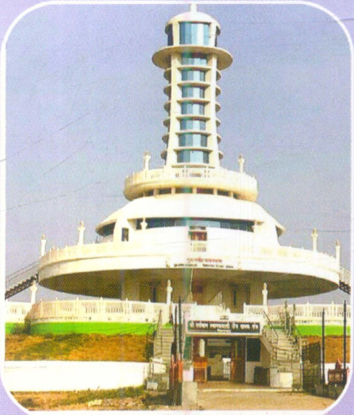

कमल कन्हैया
विहार

स्थापना के अवसर पर पूज्य गुरुदेव अपने उद्गार व्यक्त करते हुए
(कोरोना, लॉस एंजलस)।

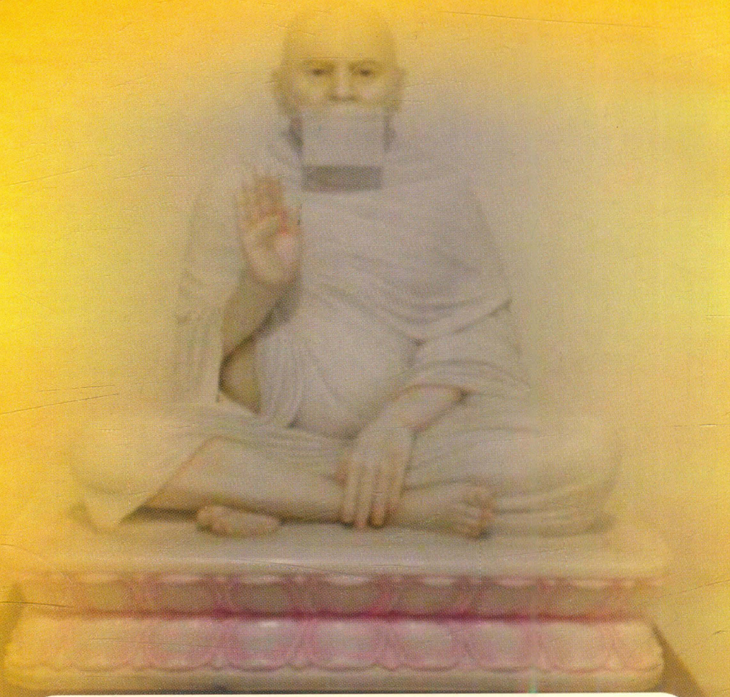

To,

From :-

भूषण शाह

चन्द्रोदय परिवार

B/405-406,

सुमतिनाथ बाबावाडी,

मांडवी (कच्छ) - 370465